मनुष्य बनो

अक्टूबर
१९८३

वा
१०

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक का होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पीं० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य १०—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष २३	आश्विन संवत २०४० वि०	अङ्क १२

दीपमालिका
की
दिव्य ज्योति का
झिलमिल प्रकाश
आपके जीवन एवम् व्यापार
में
सुख शान्ति एवम् समृद्धि
प्रदान करे
यही हमारी शुभ कामना है ।

—प्रकाशक

पत्रोत्तर

होशियार पुर
15.9.83

मेरे प्यारे अमरसिंह

राधास्वामी ! परमदयाल जी सहाई !!

मैं आपके ख्यालात का सम्मान करता हूँ और यह बात सही है तथा परम दयाल जी ने भी कहा है कि मेरे जन्म लेने का उद्देश्य सत्यता के असूल पर साईंस और फिलास्फी को मिलाकर मानव धर्म को बयान करना और मानव धर्म को जीवन में पूरा लागू करना है ।

आपने जो परमतत्त्व का एक होना, सत्तगुरु का एक होना और मानव धर्म को अमल में लाने के तीन नुक्ते लिखे हैं मैं उससे बिलकुल सहमत हूं । परम दयाल जी के वचन खाली नहीं जा सकते । मैं आपकी तीन शंकाओं के बारे में लिखता हूँ । प्यारे अमरसिंह ! गुरु का न जन्म होता है न उसकी मृत्यु होती है लेकिन इस ख्याल से कि सुरत का जन्म मानव के चोले में क्यों हुआ शरीर का जन्म दिन विशेष महत्व रख सकता है । मैं यह समझता हूं कि इस गहरी बात को आम जनता नहीं समझ सकती । आम लोग तो गुरु के शरीर को ही महत्व देते हैं । मुझे यह मालूम नहीं कि किसी ने सन् 1982 ई. में अमेरिका से मेरे जन्म दिन के बारे में लिखा होगा । यदि मन्दिर वालों ने 5 सितम्बर 1982 ई. को मेरे जन्म दिन वाले दिन कुछ आयोजन किया हो या प्रसाद इत्यादि दिया हो तो यह उनकी भावना थी । मैं खुद अपना जन्म दिन नहीं मनाता, हाँ ! मैंने उस दिन 5 सितम्बर को जो मेरे शरीर का जन्म दिन समझा जाता है एक खास सत्संग जरूर दिया क्यों कि मैं मनुष्य के चोले में आया हूँ, इसलिए मनुष्य जैसा व्यवहार करना आवश्यक है । मैंने सत्संगियों को उस दिन के उपलक्ष्य में कुछ देना चाहा । वैसे तो मेरा जीवन ही सत्संगियों की सेवा के लिए अर्पित है लेकिन जब कोई किसी को तोहफा (भेंट) देता तो वह तोहफा दुनियावी (शारीरिक) नहीं होना चाहिए । तोहफा वह होना चाहिए

जो दिन बाले की जिन्दगी का हिस्सा हैं। इसलिए मैंने सत्संग का तोफा दिया। इस को दुनियावी रीति से, मनाना नहीं कहा जा सकता, यह केवल इस बात की पुष्टि कीतसदीकहै किमैंने मनुष्य चोले में जन्मजरूरलिया है।परम दयाल जीने भी अपनी जीवनी में लिखा है कि उनकाशारीरिक जन्म 18नम्बर सन 1886 को हुआ। तो इसलिए आपको विशेष रूपसे आध्यात्मिकदृष्टिकोण से नजरिये को बुलन्द (ऊचा) करके 5 सितम्बर वाले सत्संग को समझना चाहिए! यह सही है कि परम दयाल जी ने कभी दाता दयाल जी का जन्मदिन नहीं मनाया लेकिन वह हर वर्ष शिव रात्रि के दिन जो कि दाता दयाल जी का जन्म दिन था. अलीगढ़, दयाल डिग्गी सत्संग देने जाया करते थे। वह तो हर सत्संग में दाता दयाल के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखाया करते थे।मैं भी यह चाहता हूँ कि मैं अपने नजरिये से परम दयाल जी महाराज के जन्मदिन पर अपनी कृतज्ञता दिखाया करूँ। वह कृतज्ञता केवल विशेष सत्संग देने तक ही सीमित थी। असल में, परमदयाल जी मनुष्य चोला छोड़ने के बाद हर जगह मौजूद हैं और मैंने कई बार कहा है कि मैं हूं ही नहीं; वही फकीर परम तत्व अब मानव तत्व के नाम से मेरे शरीर में काम कर रहा है। तो इस नजरिये को समझते हुए, मेरे ख्याल में, आपका यह पहला भ्रम दूर हो जाना चाहिए।

अगर परमदयाल जी के रहते हुए कोई शख्स ज्ञान को समझ जाता है और उसे अमल में लाता है तो वह शख्स कभी भी नुक्ताचीनी (आलोचना) नहीं करेगा, उसमें भेद भाव नहीं होगा और वह दूसरे के भाव का सम्मान करेगा। इसलिए आपको उस नजरिये से ही दूसरे के भावों का देखना चाहिए। महाराज जी ने यह ज्ञान तो अति अमूल्य दिया है। लेकिन कितने आदमी हैं जिन्होने उसे अपने जीवन में अपनाया है। जहाँ परमदयाल जी ने शरीर में होते हुए एक सिपाही के पुत्र के नाते डण्डे मार कर ज्ञान दिया है वैसे ही मेरे प्यारे अमरसिंह! मैं एक शिक्षक का पुत्र होने के नाते बड़े प्यार से ही उसी ज्ञान को देना चाहता हूं ताकि हरेक मानव सच्चा मानव हो जाये और उसमें चश्मेवहदत पैदा हो चश्मेवहदत का मतलब यह नहीं कि सभी एक हैं। सभी में परमतत्व तो एक है और एक रहेगा; परन्तु उनकी शारीरिक, उनकी मानसिक

दवा नहीं होतीं और हरेक सत्संगी के लिए एक-एक ही किस्म का व्यवहार नहीं होता मैं इसी असूल पर चल रहा हूं क्योंकि मुझे परम दयाल जी कि हिदायत है कि मैं हरेक के स्वभाव के अनुसार उसे सलाह, परामर्श दूँ और सच्चाई बयान करूँ। इसलिए जहाँ तक मेरा सवाल है मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ और उसके साथ २ यह भी बताना चाहता हूं कि आप दूसरे के नजरिये को समझें। अगर सन्तमत और मानव धर्म में भी हम किसी रीति रिवाज को मान लें और कहें कि सभी जजबे के दृष्टिकोण से एक ही होना चाहिए तो ऐसा करना मानव धर्म में रीति-रिवाज को जगह देना होगा। परम दयाल जी महाराज अच्छी तरह से जानते थे कि सन्तमत में कोई मूर्ति पूजा नहीं होती। जब वह दाता दयाल जी की मूर्ति के सामने ध्यान में जाते थे तो वह उसे परमतत्व मानकर ही ऐसा करते थे। इसी तरह से सनातन धर्म में पत्थरा या काँसा नहीं माना जाता, उसकी प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। प्राण-प्रतिष्ठ करते समय दैविक शक्तियों यानि ब्रह्माण्डी मन की शक्ति का आहीन किया जाता है और इस तरह से इसकी पूजा करने वाले भक्तो को यह विश्वास हो जाता है कि वह मूर्ति पत्थर या काँसा नहीं है बल्कि परमतत्व का नमूना है। इस विश्वास से ही उनके काम बनते हैं। इसलिए जहाँ आप हैं आपने भ्रम न. २ में दाता दयाल जी की मूर्ति की आरती के बारे में कहा है कि परम दयाल जी ने कभी दातादयाल जी की मूर्ति की आरती नहीं उतारी, वह सही है उन्होंने खुद उसकी आरती नहीं उतारी लेकिन शायद आपको मालूम नहीं है कि हन्म-कुन्डा में दाता दयाल जी की मूर्ति की दो बार आरती उतारी जाती है और यह आरती परम दयाल जी की मौजुदगी में भी उतारी जाती थी, परम दयाल जी उसमें शामिल जरूर होते थे और आँखे बन्द करके हाथ जोड़ कर ध्यान में चले जाते थे। मेंने खुद अपनी आँखो से अमेरिका में उन्हें ऐसे करते देखा है। एक बार कृष्ण मन्दिर में और एक बार जैन सभा में भगवान् महावीर की आरती के वक्त। इसलिए प्यारे अमरसिंह ! जब मैं शामिल होता हूँ परम दयाल जी आरती के वक्त तो मैं मूर्ति को मूर्ति नहीं समझता उसको परमतत्व

(शेष पेज ३४ पर)

गतांक से आगे —

२—मस्तिष्क की धार आमाश्य में (मेदा में) लगातार उतर उतर कर भोजन के पचाने में व्यस्त रहेगी और दिल की शाँति को दूर हटाती रहेगी।

३—महाभारत का भीम अधिक भोजन करता था। वक्रोदर (बड़ा पेट वाला) कहलाता था। छोटे बड़े सब उसकी निंदा करते थे। एक फारसी के पद का यह अर्थ है इसे याद कर लो —"खाना खाया जिक्र मालिक का किया तूने समझा खूब खाया तब जिया।" कम से कम इतना ध्यान तो रहे कि इतना न खाओ कि मुंह से बाहर आने लगे। न इतना कम कि कमजोरी से जान निकलने लगे।

हाँ, अगर जँगली और गंवार बनना है तो दूसरी बात है फिर उनकी तरह मेहनत के कार्य भी करो ताकि वह पच जावे। उनका शरीर तो पुष्ट होगा किन्तु हृदय, बुद्धि और इन्द्रियां कमजोर रहेंगी।

४—मदिरा, चाय, क़हवा और अन्य मादक वस्तुओं का प्रयोग कदापि न हो। अधिक कड़वी और कसैली वस्तुओं से भी परहेज आवश्यक है। यह अनुभव की बातें हैं। यह सब अन्दर प्रवेश होकर उत्तेजना के समान पैदा करके विशेष प्रकार की सनसनी पैदा करते हैं। बुरे विचारों में तेजी आती है और वह इसी तरह प्रज्वलित होते रहते हैं जैसें अग्नि में घृत पड़ने से अग्नि की लपटें तेज होती हैं। यह सब की सब वस्तुयें स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती हैं।

५—जो कपड़े कारबार, सैर तमाशे या दफ्तर में पहिन कर जाने के हों उन्हें भोजन करते समय न पहिना जावे। उनके अन्दर भी वही भाव, भाप बनकर भरे पड़े रहते हैं भोजन के समय के वस्त्र स्वच्छ हों। जहां तक हो सके प्रतिदिन धोये जावें।

६—खाने की वस्तु खूब साफ करके पकाई जावे ताकि धूल कंकड़ी, बालू आदि न रह जावे। नहीं तो इन वस्तुओं का आमाशय में प्रवेश होना हानिकारक होगा।

आदि में यह दशा वास्तव में थी कि बहुधा इस प्रकार की शिकायत सुनी जाती थी। उसका कारण यह नहीं कि राधास्वामी मत की शिक्षा में कोई त्रुटि है अपितु वास्तविकता यह है कि अभ्यास करने वालों को जो आत्मिक रस बहुतायत के साथ मिलने लगा तो शारीरिक सुख की ओर से उनकी बेपरवाही होती गई और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि किसी को क्षय का रोग हुआ, किसी को बवासीर हो गई और कटाक्ष करने वालों को अधिकतर त्रुटि निकालने और गलत ख्याल दिलाने का अवसर मिल गया।

यह केवल राधास्वामी मत ही की प्रारम्भिक समय की अवस्था नहीं थी अपितु हमको याद है कि जिस समय मेडम ब्लू इस्की और अरकाट कर्नल महाशय थियोसफीकल सुसाइटी के सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे तो उसके मेम्बरों में विचित्र-विचित्र भयानक रूप उत्पन्न हो गये। उनमें से किसी के बाल बहुत बढ़े हुये थे। किसी का कनगुरिया का नाखून इन्चों बढ़ा हुआ था। रंग रूप चाल ढाल सब में विशेष प्रकार का परिवर्तन आ गया और इनमें भी अधिकतर पतले दुबले मनुष्य अधिक संख्या में हो गये; किन्तु जिस प्रकार राधास्वामी मत में दोष नहीं है उसी तरह थियोसफीकल सुसायटी के ऊपर किसी प्रकार के दोष का आरोपण नहीं किया जा सकता। हम देखते हैं कि थोड़े दिन पहिले पंजाब के देव समाजियों का रूप भी विशेष प्रकार का निखरा हुआ रहता है और उनमें भी शारीरिक दुर्बलता रहती है। यह किसी संस्था या सुसायटी का दोष नहीं अपितु उसके व्यक्ति जिस समय समता के नियम से विचलित होते हुए विषमता की ओर अग्रसर होते हैं तो इस प्रकार की अवस्थाओं का प्रगट होना आवश्यक है।

सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का उपदेश है :—

"भोजन बहुत न खाव, तेरे भले की कहूँ", यहाँ अधिक भोजन के विपरीत निस्सन्देह उपदेश किया गया है क्योंकि जो बहुत खाता है उसकी मनोवृति अध्यात्म ज्ञान की ओर कमी के साथ जाती है। मस्तिष्क की धार भोजन के पचाने के अतिरिक्त और किसी ओर आकर्षित नहीं हो सकती और

अधिक खाने वाला पशुता की श्रेणी में गिरता जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अधिक खाने वाले आदमी को लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं; किन्तु इसका आशय यह नहीं समझना चाहिये कि भोजन में अधिक कमी कर दी जाये। खाओ पीओ मगर समता का ध्यान रहे।

जो मनुष्य भोजन के मामले में समता का ध्यान रखते हैं उन पर रोगों का आक्रमण कम होता है और जो अधिक खाते हैं वह अधिकतर बीमार रहते हैं। उनके स्वास्थ्य में त्रुटि रहती है।

कहते हैं कि एक बार अन्न देवता विष्णु भगवान के दरबार में गये और शिकायत की - "लोग मुझे अनावश्यक हानि पहुँचाया करते हैं।'

विष्णु भगवान ने उत्तर दिया—"मैं क्या करूँ ? हाँ ! तुम इसी तरह अपना बदला ले सकते हो कि जो तुम्हें आवश्यकता से अधिक खाये तुम उसे खा जाया करो" और तब से अधिक खाने वालों के पीछे बदहजमी (अपच) हैजा, मंदाग्नि आदि रोग लगे रहते हैं और काम काज करना तो अलग रहा, जब सूझती है सोने की ही सूझती है। क्या यह अच्छा है ? जिस प्रकार से अधिक खाने वाले शिकायत के योग्य हैं उसी तरह कम खाना भी स्वास्थ्य रक्षा का शत्रु है।

मनुष्य की खुशी का आधार उसके स्वास्थ्य पर निर्भर है। 'एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत है और एक गैर तन्दुरुस्ती हज़ार आफ़त है।'

स्वास्थ्य और खुशी का सम्बन्ध अधिकतर पेट ही से है। जब तक पेट राजी है तब तक ईश्वर भी राजी है। जब पेट नाराज हो जाता है तो फिर ईश्वर भी नाराज हो जाता है। एक कवि का कथन है:—मनुष्य की खुशी और आनन्द का सामान उसका पेट है और अगर सहज रीति से पेट की तृप्ति का मामला चलता रहता है तो फिर अधिक किसी बात की परवाह नहीं है। चार प्रतिकूल तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु (पेट के खुश रहने के कारण) परस्पर खुशी से निर्वाह करते हैं अगर इनमें से एक भी बढ़ गया

"दुनिया में सारे झगड़े बखेड़े हैं पेट के" इसी पेट की सहमति पर भक्ति भाव, भजन, पूजा साहस आदि सबका आधार है। अगर पेट का गड्ढा भरा हुआ है तो हर बात सूझती है और अगर खाली है तो सबसे पहिले खाली पेट वाले का साथ ईश्वर छोड़ देता है। औरों का तो कहना ही क्या है ? क्या कभी भूखे पेट वाले ने भी ईश्वर को याद किया है ? किसी का कथन है "अगर रोटियाँ प्राप्त हैं तो ईश्वर के साथ भी लगाव है और अगर रोटियो का ठिकाना नहीं है तो दिल परेशान रहेगा और ईश्वर को कौन याद करेगा ?"

कबीर क्षुधिया कूकरी, करत भजन में भंग।
ताको टुकड़ा डालकर, सुमिरन करो निशंक ॥

अर्थ—"कबीर साहब का कथन है कि भूखी कुतिया है जो हर समय भूँकती रहती है और भजन में बाधा डालती है। इसको टुकड़ा डालकर प्रसन्नता के साथ परमात्मा की याद में लग जाओ"

अगर पेट को भोजन नही दिया जाता तो अन्दर ही अन्दर आँते पेट को चाटने लगती हैं और मस्तिष्क की एकत्रित पूँजी व्यय होने लगती है। चित्त में खुश्की आ जाती है, खून जलने लगता है और आँतें सुकड़ती हैं और पीलिया आदि अनेक प्रकार के रोग आक्रमण कर देते हैं। यह सारी बातें भोजन की कमी के परिणाम हैं। इसके प्रति बस इतना ही पर्याप्त है।

अब जो लोग अधिक खाना खाते हैं उनके प्रति सुनो। पुराणों की एक गाथा सुनाते हैं—

दक्ष प्रजापति पेट का नाम है वह संस्कृत धातु "दक्ष" बढ़ने से निकला है। यह दक्ष प्रजापति ब्रह्मा का लड़का कहलाता है। इसके 60 लड़कियाँ हैं। इनमें से 27 चन्द्र को ब्याही हैं और 17 कश्यप ऋषि की धर्म पत्नी हैं जिनकी संतान सारे संसार में फैली हुई हैं और इसी की एक लड़की सती शिव की धर्म पत्नी थी। शिव कहते हैं कल्याण रूपी वायु को और सती कहते हैं अस्तित्व या जीवन को जीवन सम्बन्धित है काम से। इस दृष्टि से सती

शिव की स्त्री है। दक्ष प्रजापति यज्ञ करते हुये सबको उसका भाग निकाल-निकाल कर दिया करता है जिस पर सबका जीवन आधारित है। यहाँ तक शारीरिक कान्ति, सुन्दरता और रूपता जिसे अलंकार रूप में चन्द्र कहते हैं उसका भी आधार इसी दक्ष के बाँटे हुये भाग पर निर्भर है। इसी तरह कश्यप ऋषि जो सारे जगत का उत्पन्न करने वाला है वह भी जीवन का सार है जिसके साथ दक्ष की 17 कन्यायें ब्याही थीं। इसका अर्थ यह है कि सारे पेटधारी संसार के प्राणी इसी दक्ष प्रजापति के दिये हुये भाग पर निर्वाह करते हैं। इस दक्ष प्रजापति यानी दक्ष ने यज्ञ किया। अन्न की आहुतियाँ ठूँस-ठूँस कर दी। कल्याण रूपी शिव का ध्यान नहीं रक्खा जो प्राण वायु कहलाता है और उसकी स्त्री सती को रूठ कर दिया। जब पेट में भोजन अधिकता के साथ गया, सती अर्थात जीवन का दम घुटने लगा। उसी समय प्राण का दक्ष के ऊपर कोप हुआ और उसने आकर उसका सर काट दिया। इसका अर्थ यह है कि जो खाने पीने के मामले में संयम नहीं रखता वह अपने पेट के साथ बड़ी शत्रुता करता है। औषधि और चिकित्सा हुई। कुछ स्वास्थ्य के लक्षण दृष्टिगोचर हुये किन्तु भय और निर्बलता हद दर्जे की थी। दक्ष के सर पर बकरे का सर लगा देने से यही मन्तव्य है।

इस पौराणिक गाथा का अर्थ यह है कि अगर पेट ठूँस-ठूँस कर भरा जाता है तो सांस लेने में कष्ट होता हैं। प्राण का कोप होता है और दशा अकथनीय हो जाती है और वीर भद्र (शिव के गण ज्वर आदि) उत्पन्न होकर दक्ष के जगत को बीमार करते हैं और मुँह से सीधी-सीधी बात भी नहीं निकलती। इतना वर्णन अधिक भोजन करने के सम्बन्ध में पर्याप्त समझो। विषमता को छोड़ कर जो लोग समता का मार्ग अपनाते हैं उन्हें कोई शिकायत नहीं होती और उनके स्वास्थ्य में कोई त्रुटि नहीं आती।

कहावत है:— नौशेरखाँ बादशाह ने अरब देश की ओर बहुत से पारसी हकीम भेजे ताकि अरब देश की प्रजा को औषधि और चिकित्सा का लाभ पहुँचता रहे। यह चिकित्सक वर्षों अरब में रहे लेकिन वहाँ एक भी बीमार

अरबों से मिलकर पूछने लगे—"भाई ! क्या कारण है कि तुम बीमार नहीं होते और हम चिकित्सकों की सेवा से लाभ नहीं उठाते।"

अरबों ने उत्तर दिया—"खाने पीने के सम्बन्ध में हमारी दो उक्तियाँ है—एक तो जब तक भूख नही लगती हम खाना नहीं खाते। दूसरे जब तृप्ति में कुछ थोड़ी सी कसर बाकी रह जाती है कि हम खाने की ओर से अपना हाथ खींच लेते हैं।"

पारसी चिकित्सकों ने कहा "तब तुमको हमारी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है"। वहाँ से ईरान में चले आये और बादशाह से कहा—"हमको व्यर्थ ही अरब की ओर देश निकाला किया गया। अरब समता के विचार वाले हैं। उनको रोग कभी नहीं होता, इसलिये उन्हें दवा और चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं"। इतना वर्णन खाने पीने मामले में समझना चाहिये।

अब जो लोग राधास्वामी मत के अनुयाइयों की त्रुटि निकाला करते हैं उनको स्वयं सोचना चाहिए कि राधास्वामी मत जो शिक्षा देता है वह वास्तविक में दोषयुक्त है या अन समझ और संकीर्ण दृष्टि वाले सत्संगियों की विषमता उनके लिये स्वास्थ्य में बाधक हो रही हैं।

अभ्यास करने से हृदय सूक्ष्म और पवित्र बनता है और हृदय की सूक्ष्मता शरीर को भी सूक्ष्म और पवित्र बनाती है। इस तरह दोनों को स्वस्थ दशा में रहना चाहिये। स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में रहता है और स्वस्थ शरीर स्वस्थ मन से प्रभावित होकर अच्छी अवस्था में रहता है। यहाँ वास्तव में शिकायत की तो कोई बात नहीं है यह गलती अनसमझ सत्संगियों की है जो आन्तरिक रस के विचार से शरीर की ओर से बिलकुल अचिन्त हो जाते हैं और अपने स्वास्थ्य की हानि कर देते हैं।

———

वैद्यक की दृष्टि से सूक्ष्म और कारण शरीर के रोगों और स्थूल रोगों में समानता

(ले० परम संत दयाल फ़कीर साहब)

पं० बलीराम वैद्य कविराज जो मेरे गुरु भाई और दातादयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज सतगुरु के दया पात्र हैं, मेरी शारीरिक रोग की अवस्था में फरीदकोट पधारा करते थे ! आप वैद्यक में दक्ष और योग्य व्यक्ति है। एक दिन बातचीत के समय आपने शारीरिक व्यवस्था के सम्बन्ध में तर्क पूर्ण बातचीत की और कहा कि शरीर की निर्भरता पाचन शक्ति पर है। यदि पाचन शक्ति ठीक है और मल ठीक रूप से त्याग होता है तो शरीर स्वस्थ रहता है। सब बातें ध्यान पूर्वक सुनता रहा और शारीरिक नियमों के विषय में बहुत कुछ सीख पाया और लाभ उठाया जो शायद औषधियाँ खाने से न होता।

चूँकि मैंने आप की बातों से लाभ उठाया था मैंने कहा कि संत भी इसी प्रकार मनुष्य के मानसिक और आत्मक दुःखों का इलाज करते हैं। आपके और उनके इलाज में कोई अन्तर नहीं है। हाँ, जब तक चिकित्सक पूर्ण न हो उन दुखों का इलाज नहीं हो सकता। इस पर बातचीत का क्रम चल निकला जो इस प्रकार है:—

वली—आप बतायें कि संत किस प्रकार मानसिक, और आत्मिक दुःखों की चिकित्सा करते हैं।

फकीर—देह पाँच तत्त्वों के मिलाप से बना है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर (मन) भी तत्वों से बना है। कारण शरीर भी इसी प्रकार तत्वों के मेल से बना है। जिस प्रकार स्थूल देह के लिए भोजन की आवश्यकता है उसी प्रकार सूक्ष्म और कारण शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है।

वली—मन और आत्मा को किस भोजन की आवश्यकता है ?

फकीर—मन के लिए विचार का भोजन चाहिये, आत्मा के लिये बिवेक, अनुभव और आनन्द, जो विचारों का सार है, के भोजन की आवश्यकता है। जिस तरह देह अनुकूल और पौष्टिक भोजन के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता है इसी प्रकार मन भी शुभ संकल्प या विचारों के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता और आत्मा निश्चयात्मक अनुभव, विवेक और एकाग्रता के बिना

बली—मन क्यों रोगी होता है ?

फकीर—प्रतिकूल और दुर्बल विचारों को लेकर मनुष्य अपने में कमी महसूस करने लगता है अथवा आवश्यकता से अधिक शक्तिशाली विचारों को लेकर मानसिक अपच की शिकायत करता है और वह रोगी हो जाता है। धार्मिक शब्दों में दुर्बल विचारों के लेने का नाम भय या लाज है और शक्तिशाली विचारों का नाम अहंकार है।

बली—अब यह बतलाइये कि कारण शरीर कैसे रोगी होता है ?

फकीर—किसी बात के पूर्ण रूपेण किसी परिणाम पर न पहुँचना आत्मा की बीमारी कहलाती है और किसी बात के परिणाम पर पहुँच कर इसमें लय हो जाना और फिर किसी अन्य ओर ध्यान न देना भी आत्मिक बीमारी कहलाती है। धार्मिक शब्दों में पहली कमी को अज्ञान और दूसरे को खुद मस्ती या मजजूवियत या मदोन्मत्त कहते हैं। दोनों ही अवस्थायें त्रुटिपूर्ण हैं। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मध्य अवस्था या समता की आवश्यकता है इसी प्रकार मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य के लिए समता की आवश्यकता है। यही कारण है कि राधास्वामी मत में अभ्यास पर अधिक जोर नहीं दिया जाता। इसका मार्ग सहज योग है अर्थात् मन और आत्मा के स्वस्थ बनाने का अद्वितीय सामान उत्पन्न करता है। मन का स्वास्थ्य इस बात में है कि व्यर्थ के संकल्प विकल्प मस्तिष्क में न आयें। जो भी विचार उठाया जाय वह पच जाय। दूसरे शब्दों में जो विचार उठे वह व्यवहारिक जीवन का अंग बन जाये। जो मनुष्य विभिन्न और एक दूसरे के विपरीत विचारों से सम्बन्ध रखता है उसमें सहस्त्रों प्रकार के भ्रम और संशय उत्पन्न होते रहते हैं। यह भ्रम और संशय मनुष्य के मन के रोग हैं। इसी प्रकार कारण शरीर के रोगों का हाल समझिये। किसी बात की असलियत से पूर्णतया परिचित या ज्ञाता न होकर काम करना कारण शरीर का रोग कहलाता है। इसका परिणाम अशान्ति और अनिश्चयपना होता है। इसका दूसरा नाम अज्ञान है।

वली—स्वस्थ देह, मन और आत्मा के व्यवहार की समानता बताइये।

फकीर—अनुकूल भोजन खाकर शरीर इसको पकाता है और मल को त्याग देता है। इस पके हुये भोजन के रस से हड्डी, मांस, रक्त और वीर्य्य में शक्ति आती है, देह स्वस्थ रहता है और प्रसन्नता मिलती हैं। मन आवश्यक संकल्प लेकर इस पर मनन, चिन्तन और विचार करके इसे क्रियात्मक रूप में ले आता है। इससे मन, बुद्धि और अहंकार को शक्ति मिलती है और बिशेष प्रकार की मानसिक खुशी मिलती है। धार्मिक शब्दों में इसे श्रवन, मनन और निदिध्यासन कहते हैं। अब आत्मा के विषय में सुनो। जब किसी विचार को पक्का किया जाता है तो मनुष्य किसी खास नतीजे पर पहुँचता है और बुद्धि पूर्ण रीति से निश्चयात्मक हो जाती है। इससे खुशी मिलती है जिसका नाम धार्मिक भाषा में आत्म-आनन्द, अनुभव अथवा पूर्ण ज्ञान है।

शरीर अनउपयोगी पदार्थ को मल के रूप में निकालता है। मन व्यर्थ के शब्दों को छोड़ कर अपने मन्तव्य को पकड़ता है। आत्मा असलियत की ज्ञाता होकर विचार को छोड़ देती है और अभ्यास करने से सहज अवस्था आने लगती है।

शरीर नस नाड़ी मांस मज्जा, रक्त वीर्य्य बिना नहीं रह सकता। मन बिना बुद्धि, चित और अहंकार के नहीं रहता और आत्मा किसी बात के पूर्ण विश्वास के बिना नहीं रह सकती। यह देह, मन और आत्मा के समानता के अंग हैं।

वली—सूक्ष्म शरीर के लिये कौन से विचार या भोजन की आवश्यकता है?

फकीर—वैसे ही भोजन की आवश्यकता है जैसा कि देह को चाहिये।

वली—स्वस्थ शरीर के लिये हर प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता है बशर्ते कि अधिक मात्रा में न हों। अनुकूल रहेंगी।

फकीर—ऐसे ही इस सूक्ष्म शरीर के लिये, जिसमें अभी भ्रम उत्पन्न नहीं हुआ है, हर प्रकार के विचार आवश्यकता के अनुसार चाहियें।

वली—मगर रोगी के शरीर के लिये इसकी बनावट के अनुसार भोजन बताया जाता है।

फकीर—इसी प्रकार मानसिक रोगियों के लिये भी वैसी ही बनावट के अनुसार ख्यालात दिये जाते हैं।

वली—किसी दृष्टान्त से समझाइये।

फकीर-एक व्यक्ति को किसी स्त्री की सुन्दरता देख कर इश्क सवार हो गया और वह इसी धुन में दीवाना हो गया। उसको इसी समय में सूचना मिली कि अमुक साधू चमत्कारी है। अतः वह उस साधू के पास गया और उसकी बड़ी सेवा की। साधू प्रसन्न हुआ। साधू ने उससे पूछा कि तू क्या चाहता है। उत्तर दिया कि महाराज अमुक स्त्री के इश्क का भूत सवार है वह बड़ी सुन्दर है मन वश में नहीं है। दया कीजिये। साधू समझदार था। मानसिक रोगों का चिकित्सक था। इसने एक गोली मंत्र पढ़कर दी और कहा कि बेटा इसे किसी प्रकार उस स्त्री को खिलादे। वह स्वयं तुम्हारे वंश में हो जायगी। बड़े प्रयत्न के पश्चात् अवसर पाकर गोली खिला दी गई। गोली वास्तव में दस्तावर थी। गोली खाते ही स्त्री बीमार पड़ गई। साधू ने उस व्यक्ति को हकीम का भेष बनाने को कहा। अतः उसने ऐसा ही किया। साधू ने दूसरी गोली देकर कहा, 'जाओ इस गोली को स्त्री को खिला दो, वह तुम्हारी प्रेमिका हो जायगी। अतः वह हकीम के भेष में उस स्त्री के पास पहुँचा। ज्यों ही उस स्त्री की दशा देखी, अचम्भित रह गया। शरीर में दुर्बलता होने के कारण रक्त का नाम तक नहीं रहा। सुन्दरता ने कुरूपता का स्थान ले लिया। वापिस आया। साधू के पांव पड़ा और जीवन का रुझान बदल गया।

साधू लोग इसी प्रकार मानसिक और आत्मिक रोगों का इलाज करते हैं। प्रेम, भक्ति, योग, ज्ञान, धर्म कर्म सब चिकित्सा के नुसखे हैं। तुम आप चिकित्सक हो रोगी की परिस्थितियों को देख कर इलाज करते हो और स्वयं ही कहा करते हो कि जो व्यक्ति विज्ञापन दी हुई औषधि प्रयोग करता है वह गलती पर है। मानसिक रोगी के लिये भी इसी प्रकार जीवित चिकित्सक

की आवश्यकता है। हमारे यहाँ ज़िन्दा गुरु को ही विशेषता दी जाती है। जिस प्रकार कि वैद्य से मिले बिना रोगी को स्वास्थ्य प्राप्त नही होता, इसी प्रकार यह आवश्यक है कि मनुष्य जिन्दा गुरु के पास जाय ताकि गुरु इसका पूर्ण रूपेण अध्ययन करके इसे स्वस्थ बनादे और असलियत ज्ञात करादे। जो गुरु चेलों को देखे भाले बिना ही सुमिरन, ध्यान भजन का आदेश देते हैं वह पूरा इलाज नहीं कर सकेंगे। इसी वास्ते कहा गया है कि सत्संग आवश्यक है। पत्र व्यवहार से भी पूर्ण जाँच पड़ताल नहीं हो सकती। अभिप्राय यह कि जिस तरह आप शारीरिक रोगों का इलाज करते हैं, संत मत भी उसी प्रकार इलाज करता है। केवल परिस्थितियों का लिहाज रखना आवश्यक है। वैद्य लोग भी तो ऋतु और रोग की दशा का अध्ययन करते हैं। संत भी इसी प्रकार शिष्यों के घरेलू हालात, उनकी परिस्थितियों और सम्बन्धों आदि का ध्यान रखते हैं। जहां सुमिरन, ध्यान, भजन का अभ्यास बताते हैं वहाँ और हिदायत भी करते हैं।

वली—अब वह बतलाइये कि मानसिक रोगों के नाम क्या है ?

फकीर—जो नाम शारीरिक रोगों के हैं, वही मानसिक रोगों के हैं। सुनो—

शारीरिक रोग	मानसिक रोग।
दृष्टि में नुक्स होना	विचारशील न होना या दूरदर्शी न होना।
कानों के समस्त रोग	दूसरे की बात के सारांश को न समझना।
फेफड़ों के समस्त रोग	अशान्ति और भ्रांति।
पेट के कुल रोग	किसी बात पर अमल न करना।
समस्त मूत्र रोग	बकवासी और असभ्यता की बातें करना।
मस्तिष्क के रोग	निर्बुद्धि होना।
हृदय के रोग	अनावश्यक इच्छाओं का होना।

रोग कहते हैं किसी कमी का भान करना। शरीर के अन्दर जब कोई तत्व कम या अधिक हो जाता है तो शरीर रोगी हो जाता है। मन में जब कोई प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है तो वह भी रोग कहलाती है।

वली—जप करने वाले, तप करने वाले, मस्ती लेने वाले अभिप्राय यह कि सब कोई न कोई चाह रखते हैं।

फकीर—इसलिये संत जप करने वालों, तपस्वियों, योगियों और कर्मियों को रोगी समझते हैं। राधास्वामी सार वचन (पोथी में इस विषय में स्पष्ट लिखा है कि इन इच्छा रखने वालों ने वह दर्जा प्राप्त नहीं किया जो राधास्वामी दयाल बतला गये। सब के सब मार्ग भूले हुये हैं और रोगी हैं।

वली—राम राम! आप क्या कह रहे हैं।

फकीर—जिस प्रकार वैद्य की औषधि कड़वी होने के कारण रोगी घबड़ाता है उसी प्रकार आप मेरी बातों को सुनना नहीं चाहते।

वली—नहीं, आप समझाइये।

फकीर—योगी योग क्यों करता है? इसलिए कि वह आनन्द चाहता है। कामी काम क्यों भोगता है? क्योंकि वह रस या लज्जत का इच्छुक है। ज्ञानी ज्ञान क्यों सीखता है? इसलिए कि उसकी बुद्धि निश्चयात्मक नहीं। इसका इलाज चाहता है कि किसी प्रकार सुख मिले। भ्रमी भ्रम में क्यों फंसा है क्योंकि उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं। यह भी सुख का दीवाना है। भक्त क्यों भगवान् को पूजता हैं? क्योंकि निर्बल है, सहारा चाहता है। यह भी खुशी का इच्छुक है। संसारी जीव अफसरों और धनवानो की चापलूसी करते हैं क्योंकि इनमें कुछ कमी है। धन आदि की इनमें चाह है। आप स्वयं ही बतलाइये यह सबके सब रोगी ठहरे या स्वस्थ। ये सब के सब अपने में कमी प्रतीत करते हैं। केवल इसीलिए राधास्वामी मत में समझाने बुझाने के लिए इनका खंडन किया और सच्चाई को प्रगट किया। सिद्धांत यह है कि जहाँ आवश्यकता है वहाँ कमजोरी है और वहाँ ही रोग है; क्योंकि रोग का दूसरा नाम ही कमजोरी है। संत ऐसी ही निर्बलताओं को दूर करते हैं।

वली—इस दृष्टि से तो कोई भी स्वस्थ नहीं हुआ?

फकीर—आप हकीम हैं। स्वयं ही बतलाइये कि क्या कोई मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ है?

वली—नहीं।

फकीर- बस तो फैसला हुआ कि किसी न किसी रूप में सब ही रोगी हैं। यदि कोई रोगी नहीं है तो वह कोई सन्त है।

रोगी सब संसार है निःरोगी कोई सन्त (कबीर)

वली- इन रोगों का इलाज क्या है ?

फकीर- इनका इलाज उसी नियम के अनुसार होता है जैसे शारीरिक रोगों का। आप रोगी में अधिक गर्मी होने पर ठंडी वस्तु देते हैं और सर्दी हो तो गर्म वस्तु। अभिप्राय यह कि जिस तत्व की कमी होती है उसको पूरा कर दिया जाता है। इसी प्रकार चाह रखने वाले मनुष्य को संत उसकी चाह के पूरा होने का ढंग बतलाते हैं ताकि किसी प्रकार उसकी चाह मिट जाय और उसकी तृप्ति हो जाय। तत्पश्चात अधिकार के अनुसार उसे ऐसी अवस्था में ले जाने का प्रयत्न किया जाता है जहां कमी का प्रश्न ही नहीं रहता। पहिली दशा में उपाय से काम लिया जाता है और दूसरी दशा में सत्संग की आवश्यकता होती है।

वली- दृष्टान्त से समझाइये।

फ़कीर- अपने कुटुम्ब में मैं, मेरी स्त्री और मेरा भाई हम तीन व्यक्ति सत्संगी हैं। मेरी स्त्री को दाता दयाल (महर्षि शिव) ने यह आज्ञा दी थी कि जब कोई एक कहे तो तुम उसको सौ सुनाओ। पहिले वह दुखी रहती थी। किसी की बात को सहन नहीं किया करती थी। इस आज्ञा के पालने से उसका इलाज हो गया और वह अब प्रसन्न रहती है ? मेरा भाई साँसरिक वस्तु या धन, मान, प्रतिष्ठा की लालसा की चाह रखता था। उसे आज्ञा हुई।

Life means work & work means life.

जीवन का अर्थ काम में व्यस्त होना है और काम में लगे रहना ही जीवन है।

वह इस कार्य में प्रसन्न है। आज कल रेलवे में उच्च अधिकारी हैं और राय साहिब की पदवी पाई हुई है। अब मेरा हाल सुनिये। मैं दुनियां के दुखों से छुटकारा चाहता था। असलियत का ज्ञाता होने की कुरेद थी। इस-लिए मुझे फकीरी मिली। अब शान्त हूँ और दुखों से स्वतन्त्र हूँ। अब आप

समझ गये होंगे कि पूर्ण गुरु से ही इच्छित वस्तु प्राप्त होगी मगर चाह सच्ची होनी चाहिये ।

वली- इसका अर्थ यह हुआ कि एक नियम काम नहीं करता ।

फकीर- कदापि नहीं । यद्यपि राधास्वामी मत ने सुमिरन ध्यान और भजन का एक विश्वासनीय इलाज निकाला हैं मगर यह इसी तरह है जिस तरह रोगीं वैद्य से मिल कर और हाल बताकर औषधि लेता है । यद्यपि वैद्य अधिकतर दवा तो वही पुष्ट कारक देता है किन्तु रोगीं की तबियत का ध्यान रख कर अनोपान आदि में परिवर्वन कर देता है जिससे रोगी शीघ्र और सरलता से स्वस्थ हो जाय । मानसिक रोगी के लिये सब से पहिले सत्संग की अत्यन्त आवश्यकता है । इसके पश्चात सतगुरु रोगी का हाल जान कर इसके हालात के अनुसार नुसखा बतलाता है । इनके लिये प्रत्येक रोगी के लिये अमीपान पृथक पृथक होता है । यदि किसी को सफलता नहीं मिलती तो उसका कारण होता है । या तो रोगी ने औषधि का प्रयोग ही मन से नहीं किया अथवा अनोपान नहीं बताया गया । यदि दोनों बातों पर सही अर्थो में अमल किया गया है तो समझना चाहिये कि रोग का निदान गलत हुआ है ।

वली- मुझे वैद्यक की दृष्टि से समझाइये कि यह नुसखा कैसे मानसिक और आत्मिक दुखों का अन्त कर देता है ।

फकीर- सबसे पहिले यह समझना आवश्यक है कि वैद्यक की दृष्टि से मन क्या है और आत्मा क्या है । जब तक इनकीं समझ न आयेगी, आगे की बात समझ में न आ सकेगी ।

वली- तो समझाइये ।

फकीर- शुद्ध रक्त और वीर्य्य के अन्दर जो सूक्ष्म परमाणु होते हैं वह मन के अंग हैं और शुद्ध रक्त और वीर्य्य में जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परमाणु होते हैं वह आत्मा है । राधा स्वामीमत के शब्दों में यों समझिये-

(१) दयाल देश	(२) काल देश	(३) माया देश
सुरत	मन	देह

से भी सूक्ष्म तत्व है वह आत्मा है। वह परमाणु इच्छानुसार नीचे को आते हैं तो उसे धार का फूटना या सुरत का निज धाम से उतार बोलते हैं। वह असली तत्व नीचे की ओर आकर सूक्ष्म परमाणुओं से मिल जाता है तो मन के अन्दर शक्ति आ जाती है। यदि ऐसा न हो तो मन कभी भी शक्ति प्राप्त न कर सके। इसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व आत्मा या सुरत मन को साथ लिये जब देह में आता है तो सांसारिक व्यवहार होता है। जब तक यह उतार, उतार में व्यवहार और फिर वापिसी का क्रम ठीक काम करता रहता है तब तक मनुष्य को कोई कष्ट प्रतीत नहीं होता। जिस समय इस क्रम में किसी कारण से रुकावट होनी प्रारम्भ होती है तो बस वही दुख का प्रारम्भ समझ लीजिये। राधास्वामी मत के शब्दों में इसी का नाम है घर भूल जाना अथवा सुरत का पिंड देश में आकर फंस जाना। तुम देखो हृदय रक्त निकल कर सारे शरीर में चक्र करता हुआ फिर वहीं वापिस आता है। यदि किसी कारण से इस व्यवस्था में रुकावट पड़ जाय तो जीवन समाप्त समझिये। अतः रोग नाम है किसी तत्व के निकलने में अधिकता का होना। इच्छा के कारण हरकत(गति)होती है और वही गति समस्त दुःखों की जड़ है। सुमिरन, ध्यान और भजन से यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व (सुरत) अपने केन्द्र को वापिस चला जाता है और अधिकता के साथ निकलने का प्रश्न नही रहता। विचार मनुष्य के सूक्ष्म तत्व का अंश है। जब यह सूक्ष्म तत्व शरीर से आवश्यकता से अधिक निकलने लगता है तो कमी का भान होने लगता है। तुम स्वयं देखते हो कि कमी वीर्य्य वाला या दुर्बल रक्त वाला आदमी अधिक चंचल और बहमी होता है। कारण कि वीर्य के अधिक पतन से आत्मा और मन की शक्ति दुर्बल पड़ जाती है। गंदे विचारों से जब वीर्य्य अपना स्थान छोड़ देता है तो वह दूसरे स्थान में स्थापित होता है। इसी कारण से आतिशक आदि के रोग आ घेरते है। इसका परिणाम आप जानते ही हैं। इसी प्रकार इच्छाओं के क्रम में सहस्त्रों प्रकार के कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं।

फकीर—इसी प्रकार मानसिक व्यवस्था में रक्त और वीर्य्य के सूक्ष्म परमाणु मुख्य हैं और आत्मिक व्यवस्था में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु मुख्य हैं।

वली—यह सूक्ष्म और कारण शरीर के परमाणु क्यों कर निकलते हैं ?

फकीर—आँख, कान और जिभ्या के द्वारा यह निष्कासन वाह्य प्रभावों के आधीन आरम्भ होता है।

वली—मानसिक दुःखों को तो मैं समझ गया। अब सात्मिक दुःखों की व्याख्या कीजिये।

फकीर—आत्मिक दुःख अज्ञान है।

वली—वैद्यक के द्वारा इसकी व्याख्या कीजिये।

फकीर—हड्डी, माँस, रक्त, आर वीर्य्य के अन्दर जो सूक्ष्म परमाणु हैं, वह मन का माद्दा (पदार्थ) हैं और शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रक्त में जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु हैं वह सुरत है। सत् अर्थात् स्व स्वरूप में गति होना स्वभाविक है और इस गति के कारण वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु (सुरत) अपना स्थान छोड़ कर मन और देह में आ जाते हैं। यदि वासनायें प्रबल हैं तो वह परमाणु देह ही में फँस जाते है। चूंकि वे अपने केन्द्र को वापिस नहीं लौटते इसलिए किसी वस्तु की कुरेद लगी रहती है जिसको धार्मिक शब्दों में अज्ञान कहते हैं। जब तक यह परमाणु अपने स्थान को वापिस न जायेंगे, अज्ञान दूर न होगा। राधास्वामी मत में इन ही परमाणुओं को वापिस ले जाने के लिये साधन और अभ्यास का आदेश दिया जाता है। आप राधास्वामी मत की पुस्तकों का अध्ययन कीजिये। विशेष रूप से पोथी सार वचन (गद्य व पद्य)। मैंने इन दोनों पुस्तकों के समझने में सारी आयु व्यतीत की है मगर अब खुश हूं कि अन्त में सार भेद समझ में आ गया और अब शांत हूँ।

वली—आपने बताया कि सुरत मनुष्य के शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रक्त के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं का नाम है। माना कि मन मिश्रित है अर्थात् तत्वों से मिल कर बना है मगर क्या सुरत भी मिश्रित है।

का नाम हैं और मिश्रित है।

वली—प्रमाण ?

फकीर—सोचो, जो वस्तु एक है उसमें न विचार होता है न भान। अभिप्राय यह है कि कुछ नहीं हो सकता।

जहाँ मिलौनी तहाँ विचार। एक-एक में कहा विचार॥

(रा० स्वा० दयाल)

सुरत में यह परमाणु इस प्रकार मिले हुये हैं कि साधक या अभ्यासी के सिवाय दूसरे को जानकारी नहीं हो सकती।

बली—आत्मा तो एक कहा जाता है।

फकीर—वहाँ अर्थ उस स्थान से है जो सुरत का आधार है। राधास्वामी मत में इसको अनामी धाम कहा है अर्थात् प्राकट्य होने से पहिले की अवस्था है। वैद्यक के सिद्धान्त और राधास्वामी मत में सुरत एक नहीं है। सत में गति होने के कारण जब शब्द उत्पन्न होता है उस समय सुरत की उत्पत्ति होती है। सुरत अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु सत में स्वाभाविक गति होने से उत्पन्न होते हैं। सोचो, हम पिता के मस्तिष्क में एक अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणु थे। पिता के मस्तिष्क में क्षोभ आया, इच्छा हुई और उस गति के कारण हम बाहर आये और माँ के पेट में प्रवेश पाया। वहाँ उसके रक्त और रज के साथ मिल कर पुष्टि पाई। जिस समय हम पिता के मस्तिष्क में थे तो हम कारण रूप थे। न वहाँ किसी का भान था न गति। अब हम हुये और आज इस दशा में हैं जो तुम देख रहे हो। दाता दयाल ने अनेकों पुस्तकें लिखी हैं जहाँ सुरत और मन के विषय को स्पष्ट वर्णन किया है, उनका अध्ययन किया जा सकता है।

वली—अच्छा समझ गया। आपका अभिप्राय है कि यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म कारण शरीर के परमाणु मस्तिष्क में लौट जायें तो हम पूर्ण सुख प्राप्त कर लेंगे।

फकीर—हाँ, इससे आगे भी कुछ है।

वली—वह क्या है ?

फकीर सत प्रगट में रहता है। वह देह रखते हुए कभी अधिक देर तक अपने असल स्थान पर नहीं रह सकता उत्थान होना अनिवार्य है। कोई व्यक्ति सदा के लिए इस स्थान पर नहीं रह सकता। वैद्यक नियमों की दृष्टि से वह परमाणु शरीर के रहते हुए अवश्य नीचे आयेंगे। चूंकि सुरत नीचे आकर निचले स्थानों में फंस जाती है इसलिये दुखी होती है और अपने रूप, अपने स्थान और अपने घर को भूल जाती है। इसको पहिले अपने घर ले जाना है। जब साधन से यह अपने असली स्थान पर वापिस चली जाती है तो उस समय देह, मन और सुरत में थिरताई आ जाती है अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक भान नहीं रहता फिर जब उतार होता है तो पूर्ण गुरु की आवश्यकता होती है। वह यह समझा देता है कि सँभल कर चलने का अभिप्राय यह समझलो कि सुरत तो देह के रहते हुए नीचे अवश्य जायेगी मगर वह इन शरीरों और विचारों में फंसेगी नहीं। इस अवस्था का नाम चौथा पद या राधास्वामी धाम की प्राप्ति है। इस अवस्था का ज्ञाता मनुष्य सब कुछ करता हुआ भी अकर्त्ता व अलिप्त रहता है। यही संत गति है। यही जीवन मुक्त अवस्था है। सुरत शब्द योग से सुरत अर्थात सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु निज स्थान में बिना कष्ट और भय के वापिस चले जाते हैं और सत्संग के प्रभाव से निज अनुभव होने पर दुख सुख नहीं व्यापता। इसलिए ऐ वली ! सहज रीति से सुरति शब्द योग की कमाई करो।

वली— तो क्या सुरत शब्द योग इस पूर्ण अवस्था के प्राप्त करने का साधन है ?

फकीर— जी हाँ, यह जीवन— सत का खेल, आनन्द के लिये मिला था मगर वाह्य पदार्थों और वाह्य प्रभावों से प्रभावित होकर सुरत अपना निजरूप भूल गई और उसने व्यर्थ का दुख मोल ले लिया। इसलिए अपने स्थान पर वापिस चलो। जब वापिस अपने घर पहुँच जाओगे, तो शरीर धारी होने के कारण जब तक शरीर है संसार में तो रहना ही होगा मगर सुख और दुख की दोनों अवस्थाओं से छुटकारा मिल जाएगा।

वली— अच्छा तो आप यह बतलाइये कि मुझे क्या रोग है ?

फकीर— आप सतोगुणी पुरुष हैं मगर साथ ही थोड़ा सा रजोगुण भी है। आप का रोग अज्ञान और साथ में थोड़ा सा वहम भी है।

अभिप्राय यह है कि आपके सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु जिस को मैंने सुरत कहा है अपना स्थान छोड़कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर गये हैं। सतोगुणी होने के कारण परमाणुओं का उतार नीचे को अधिक नहीं हुआ। अतः आप में मस्ती और आनन्द लेने की इच्छा है और साथ ही रजोगुण होने से तबियत का रुझान सांसारिक कार्यों की ओर भी है।

वली— क्षमा कीजिये। मैं अभ्यास करता हूँ मगर वह दृश्य नहीं देख पाता जो मैंने सुन रक्खे हैं। सुमिरन करता हूँ मगर सुमिरन भूल जाता हूँ और एक ऐसी हालत का उतार होता है जहाँ न नींद है न कुछ और है। समाधि की अवस्था समझिये। इसलिये मैं समझता हूँ कि मेरा अभ्यास ठीक नहीं बनता।

फकीर— जो दृश्य त्रिकुटी या सुन्न आदि के स्थानों पर दिखाई देते हैं वह मानसिक हैं, काल के हैं, अथवा उन परमाणुओं की गति का परिणाम है जिनको मैंने मन कहा है। इसलिये यदि किसी को अभ्यास के समय में दृश्य कम दिखाई दें तो उसमें हानि क्या है ! वैद्यक की दृष्टि से इन दृश्यों; प्रकाशों और आँतरिक शब्दों की वास्तविकता सुनिये।

शरीर के अन्दर रक्त गति करता हैं। जहां जहां और जिस जिस स्थान में जैसी जैसी शक्ति से गति करता है वहाँ उसी अन्दाज से और उसी प्रकार की आवाज पैदा होती है। डाक्टर लोग टोंटी (एक यन्त्र) लगाकर हृदय की गति को सुनते हैं और फेफड़ों की दशा अथवा रक्त के दवाब आदि को समझने का प्रयत्न करते हैं। यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि जहां गति है वहां शब्द या आवाज का उत्पन्न होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त यदि गति मोटे परमाणुओं की है तो आवाज भी मोटी होगी। यदि सूक्ष्म परमाणुओं की हैं तो आवाज भी सूक्ष्म होगी। पीतल के टुकड़ों को टकराओ तो आवाज पैदा होगी, जो मोटी होगी। पीतल के तार से दूसरे प्रकार की आवाज निकलेगी

वह बारीक होगी। साथ ही यदि गति स्थूल वस्तु से हो तो उसका रंग धुँधला या काला होगा और यदि सूक्ष्म वस्तु से हो तो इसका रंग सफेद होगा। हम जो भोजन खाते हैं इसका रंग दूसरा है। जब इसी से रक्त बनता है, इसका रंग लाल होता है। वही रक्त जब वीर्य्य बनता है तो श्वेत हो जाता है। अभ्यास के दौरान में तवज्जह या सुरत विभिन्न स्थानों से होकर जाती है और तरह तरह के अन्तरीय रंगों की छाया इस पर पड़ती है जिनको हम दृश्य और प्रकाश कह देते हैं। प्रत्येक मनुष्य के शरीर की बनावट पृथक है, इसलिए अभ्यास के अनुभव भी पृथक पृथक होंगे। बस यदि किसी को दृश्य आदि अधिक देखने में न आवे तो कोई हानि नहीं। अभ्यास का मन्तव्य केवल यह है कि सुरत या सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं का समूह जो कि कारण शरीर में है एक बार निज भंडार में अर्पित चला जाय। दूसरे शब्दों में जाग्रत अवस्था में स्वप्नावस्था का नक्शा दिखाई दे अथवा खुद अखत्यारी (आत्मसात) की दशा में गहरी नींद की हालत का उतार हो जाय। जब यह हो चुके तो समझ लेना चाहिये कि काम बन गया है। यहाँ यह बात भी बता देना आवश्यक है कि सच्चा प्रेमी; सच्चा भक्त अपने प्रेम से स्वयं इसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है। राधास्वामी मत में इस अवस्था को महा सुन्न कहा गया है। यहाँ आकर अनुभव होगा और सुरत या कारण शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु अपने आप खेलना शुरु कर देंगे अर्थात उतार के बजाय गति अपने आप में होगी। इस अवस्था को भँवर गुफा कहते हैं। इसके पश्चात वह परमाणु शान्ति प्राप्त करके फिर से नीचे आयेंगे क्योंकि जबतक देह मौजूद है उतार का होना लाजिमी है मगर अब अशान्ति और बेचैनी की दशा नहीं रहेगी।

वली— समझ गया, मगर आप तो बेखवाहिशी या निष्काम होने की हिदायत किया करते हैं।

फकीर— संत कहते हैं कि इच्छा या कामना रहित हो जाओ। यह शब्द केवल जीव दृष्टि से है और यह उनके लिये है जो वासनाओं के वश दुखी हैं। वास्तव में इच्छा के बिना जीवन का अर्थ क्या है। जहां सत में गति होना स्वाभाविक कर्म है वहां मनुष्य के अन्दर इच्छा का उत्पन्न होना भी अनिवार्य

है। आवश्यकता इस बात की है कि हम में जो आत्मविस्मृति आ गई है अथवा हम जो इच्छाओं के जाल में उलझ गये हैं उसका प्रभाव जाता रहे। जब अपने रूप का ज्ञान हो जाता है और सार तत्व समझ में आ जाता है तो फिर यह संसार दुखदाई नहीं रहता। यही राधास्वमी मत की शिक्षा का निचोड़ है। राधास्वामी मत स्पष्ट कहता है कि निज स्वरूप का साक्षात्कार करो। जब उस अवस्था में पहुँच जाओगे तो काम, निष्काम, रागद्वेष आदि हम सब नीचे रह जायेंगे।

वली—यदि हम वैद्यक की दृष्टि से यह मान ले कि आत्मा(रूह) नाम है शुद्ध रक्त और वीर्य्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व का और मन नाम है रक्त हड्डी, माँस और वीर्य्य के सूक्ष्म परमाणुओं का, तो क्या ईश्वर, परमेश्वर और ब्रह्म आदि का अस्तित्व गलत सिद्ध न हो जायगा ?

फकीर—नहीं; केवल नाम का अन्तर होगा। मस्तिष्क के जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व हैं वह कारण शरीर है। उसमें जो बोधन शक्ति है वह रूह(आत्मा) कहलाती है। इसी मस्तिष्क में जो स्थूल पदार्थ है उसकी बोधन शक्ति का नाम मन है। इसके उपरान्त जो शरीर के अन्दर कई प्रकार की बोधन शक्ति हैं, वह शरीर से सम्बन्ध रखती है और इन्द्रियों के कारण से हैं। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड के अन्दर स्थूल, सूक्ष्म और कारण पदार्थ हैं। इनका नाम इनके काम की दृष्टि मे धार्मिक शब्दों में ईश्वर, परमेश्वर ब्रह्म आदि रक्खा हुआ है।

वली— तो जो उपासना हम या अन्य लोग विभिन्न ढँगों से करते हैं वह निर्थक हैं ?

फकीर— जिस ढंग से जन साधारण उपासना करते हैं वह वास्तव में निरर्थक है, किन्तु उपासना के यदि यह अर्थ लिए जावें कि उपासक ईश्वर, ब्रह्म या मालिक के स्वरूप को जानना चाहता है तो निस्संदेह यह सच्ची उपासना होगी। द्वैत के पर्दे में की हुई उपासना असली लाभ न पहुँचायेगी।

वली– मैं समझ गया मगर उससे हिन्दुओं का सिद्धान्त 'आवागमन' गलत

फकीर— किस प्रकार ?

वली– जब शरीर छूट गया तो हर एक तत्व अपने भंडार में मिल गया फिर आवागमन किस को हुआ ।

फकीर– यह दशा केवल उनकी होगी जो अपनी सुरत को निज स्थान में ले जा चुके हैं, दूसरों की नहीं । वह मरने के पश्चात सूक्ष्म या कारण शरीर को लिए हुए इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान होंगे और इन्हें कहीं न कहीं जन्म लेना पड़ेगा ।

वली– इस रहस्य को स्पष्ट करके समझाइये ।

फकीर– जब जब स्थूल शरीर के तत्वों की शक्ति नष्ट हो जाती है तो यह शरीर नहीं रहता; मगर सूक्ष्म तत्वों की ग्रंथी अर्थात मन, जिसे सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। कारण शरीर सहित शेष रहता है । यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति कम नहीं हुई तो उसका रुझान सदा बाहिर मुखी रहेगा, अथवा दूसरे शब्दों में वह स्थूल तत्वों की ओर आकर्षित होगा । इसलिये मृत्यु के पश्चात वह सूक्ष्म शरीर फिर से प्राकृतिक ढंग से बाहरी स्थूल तत्वों के द्वारा किसी शरीर में आकर प्रगट होगा, किन्तु यदि सूक्ष्म शरीर निर्बल हो चुका है अर्थात वासनाओं के वशी भूत नहीं है तो वह भी नष्ट हो जाएगा, अर्थात उसके परमाणु भी बिखर कर सूक्ष्म तत्वओं में मिल जायेंगे । इसी प्रकार कारण शरीर का हाल समझिये । स्पष्ट शब्दों में यों कहिये कि जब तक आस का अँश शेष हैं, मृत्यु के पश्चात जीव का किसी न किसी रूप में उभार होगा और इसका आवागमन न छूटेगा । अतः बे आस या निष्कामी होना आवश्यक है । यह इसी सूरत में सम्भव है जब कि आवश्यकतायें सीमित रक्खी जावे और मनुष्य निष्काम भाव से काम करें ।

बली-- ऐसा करना तो कठिन दिखाई देता है ।

फकीर– यही कारण है कि संतों के मार्ग में बल पूर्वक त्याग की शिक्षा नहीं दी जाती । आशाओं और इच्छाओं को भोगना चाहिये । इसी में भलाई है । पूर्ण गुरु जीवों की संभाल करता है और एसे तरीके बतलाता है जिस से जीवों में दूसरी इच्छायें उत्पन्न न हो । संत मत की शिक्षा साधारण शिक्षा

२—मस्तिष्क की धार आमाश्य में (मेदा में) लगातार उतर उतर कर भोजन के पचाने में व्यस्त रहेगी और दिल की शाँति को दूर हटाती रहेगी।

३—महाभारत का भीम अधिक भोजन करता था। वक्रोदर (बड़ा पेट वाला) कहलाता था। छोटे बड़े सब उसकी निंदा करते थे। एक फारसी के पद का यह अर्थ है इसे याद कर लो—"खाना खाया जिक्र मालिक का किया तूने समझा खूब खाया तब जिया।" कम से कम इतना ध्यान तो रहे कि इतना न खाओ कि मुंह से बाहर आने लगे। न इतना कम कि कमजोरी से जान निकलने लगे।

हाँ, अगर जँगली और गंवार बनना है तो दूसरी बात है फिर उनकी तरह मेहनत के कार्य भी करो ताकि वह पच जावे। उनका शरीर तो पुष्ट होगा किन्तु हृदय, बुद्धि और इन्द्रियां कमजोर रहेंगी।

४—मदिरा, चाय, क़हवा और अन्य मादक वस्तुओं का प्रयोग कदापि न हो। अधिक कड़वी और कसैली वस्तुओं से भी परहेज आवश्यक है। यह अनुभव की बातें हैं। यह सब अन्दर प्रवेश होकर उत्तेजना के समान पैदा करके विशेष प्रकार की सनसनी पैदा करते हैं। बुरे विचारों में तेजी आती है और वह इसी तरह प्रज्वलित होते रहते हैं जैसे अग्नि में घृत पड़ने से अग्नि की लपटें तेज होती हैं। यह सब की सब वस्तुयें स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती हैं।

५—जो कपड़े कारबार, सैर तमाशे या दफ्तर में पहिन कर जाने के हों उन्हें भोजन करते समय न पहिना जावे। उनके अन्दर भी वही भाव, भाप बनकर भरे पड़े रहते हैं भोजन के समय के वस्त्र स्वच्छ हों। जहां तक हो सके प्रतिदिन धोये जावें।

६—खाने की वस्तु खूब साफ करके पकाई जावे ताकि धूल कंकड़ी, बालू आदि न रह जावे। नहीं तो इन वस्तुओं का आमाशय में प्रवेश होना हानिकारक होगा।

७—जिस जगह खाना खाया जाय वह कारबार, पढ़ने लिखने, मिलने मिलाने और सोने की जगह न हो। खाने की जगह सबसे अलग थलग हो। उस जगह किसी प्रकार के चित्र भी न हों। जहां जिस प्रकार का कारबार किया जाता है वैसा ही मंडल वहां बन जाता है। उन्हीं विचारों की भाप से वह जगह भरी रहती है। यह नियमित और दार्शनिक बात है। इसलिये खाने पीने की जगह सबसे अलग और पवित्र हो।

८—मांस खाने से सदा परहेज रहे नहीं तो पशुता और पशुवत वृति शरीर पर प्रभावित होगी और हृदय में शान्ति का नाम तक न रहेगा। विचार चंचल और गन्दे होंगे। मांसाहारी के शरीर से विशेष प्रकार की गन्ध निकलती रहती है। यदि कभी अनुभव करने का अवसर न मिला हो तो अब से ख्याल रहे।

९—ताजा साग तरकारी का सेवन किया जावे। सड़ी गली और सूखी हुई न हों। शलजम, चुकन्दर, गाजर, मूली, प्याज, लहसन आदि के उपयोग से अन्तर में गर्मी पैदा होती है। शीघ्र न पचने वाले आहार से भी परहेज आवश्यक है। मन्दाग्नि समस्त रोगों की जड़ है।

१०—खाने का समय प्रातः और सायंकाल को सूर्य के रहते रहते निश्चित रहना चाहिये; क्योंकि सूर्य की गर्मी को आमाशय की गर्मी से विशेष सम्बन्ध है। ईससे पाचन शक्ति ठीक नहीं रहती है।

११—खाना खूब चबा चबाकर स्थिरता के साथ खाना चाहिये। ऐसा न हो कि काम दाँत से सम्बन्धित है वह बेचारे मेदे (आमाशय) को करना पड़े। इससे आमाशय में भिन्न प्रकार की खराबियों के उत्पन्न होने का भय और सम्भावना है। भोजन करते समय बात चीत करना या हँसना नहीं चाहिये। मन में केवल शान्ति का ध्यान रहे। इस प्रकार खाये हुये भोजन से मन में विशेष प्रकार की शान्ति उत्पन्न होगी।

१२—भोजन सादा और पचने वाला हो और अधिक चिकनाई युक्त न

13—एक बार मिस्टर ओनंगफिंग चीनी राजदूत अमरीका में अपना काम कर रहे थे। आयु अधिक थी। किन्तु स्वस्थ थे। उनके शारीरिक स्वास्थ्य और दशा को देखकर एक व्यक्ति ने आपके आहार की बाबत पूछा। आपने उत्तर दिया—

(अ) मैं प्रातः न नाश्ता करता हूँ और न शाम को टिफिन खाता हूँ। दिन रात में केवल दो बार भोजन करता हूँ।

(ब) मैं किसी प्रकार का माँस नहीं खाता। मेरे भोजन में चावल, गेहूँ, सब्जी, तरकारी और ताजा फल सम्मिलित हैं।

(स) कहवा, कोको, चाय, मदिरा, चिकनी और मसालेदार वस्तुओं से परहेज करता हूँ।

(द) मैं नमक प्रयोग नहीं करता, क्योंकि मेरे विचार के अनुसार नमक हड्डियों को गला देता है

(क) मैं हर कौर को खूब बारीक कर देता हूँ।

(ख) मैं खाते समय पानी नहीं पीता बल्कि खाने के डेढ़ घण्टे बाद पानी पीता हूँ।

(ग) लम्बी और गहरी सांस लेने का अभ्यास खुली हवा में प्रातः नित्य प्रति करता हूँ।

(घ) थोड़ा सा व्यायाम करता रहता हूं।

14 यह थोड़ी सी सीधी सादी बातें हैं। अगर इनका साधन किया जावेगा तो अवश्य लाभ होगा। न किया जावेगा। हानि होगी मैंने जो कुछ समझाना था समझा दिया। मानना न मानना तुम्हारा काम है।

(५) भोजन और राधास्वामी पंथ

एक फारसी पद का उलथा निम्नलिखित है:—

इतना ठूंस-ठूंस कर भोजन न खा कि तेरे मुंह से बाहर निकलने लगे न। इतनी कमी के साथ खा कि कमजोरी जान निकलने का भय रहे।

राधास्वामी मत बहुधा लोग कटाक्ष के रूप में इस प्रकार की आपत्ति उठाया करते हैं कि राधास्वामी मत के अनुयायी सदा शरीर के निर्बल और दुबले पतले होते हैं।

अरबों से मिलकर पूछने लगे—"भाई ! क्या कारण है कि तुम बीमार नहीं होते और हम चिकित्सकों की सेवा से लाभ नहीं उठाते।"

अरबों ने उत्तर दिया—"खाने पीने के सम्बन्ध में हमारी दो उक्तियाँ है—एक तो जब तक भूख नही लगती हम खाना नहीं खाते। दूसरे जब तृप्ति में कुछ थोड़ी सी कसर बाकी रह जाती है कि हम खाने की ओर से अपना हाथ खींच लेते हैं।"

पारसी चिकित्सकों ने कहा "तब तुमको हमारी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है"। वहाँ से ईरान में चले आये और बादशाह से कहा—"हमको व्यर्थ ही अरब की ओर देश निकाला किया गया। अरब समता के विचार वाले हैं। उनको रोग कभी नहीं होता, इसलिये उन्हें दवा और चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं"। इतना वर्णन खाने पीने मामले में समझना चाहिये।

अब जो लोग राधास्वामी मत के अनुयाइयों की त्रुटि निकाला करते हैं उनको स्वयं सोचना चाहिए कि राधास्वामी मत जो शिक्षा देता है वह वास्तविक में दोषयुक्त है या अन समझ और संकीर्ण दृष्टि वाले सत्संगियों की विषमता उनके लिये स्वास्थ्य में बाधक हो रही हैं।

अभ्यास करने से हृदय सूक्ष्म और पवित्र बनता है और हृदय की सूक्ष्मता शरीर को भी सूक्ष्म और पवित्र बनाती है। इस तरह दोनों को स्वस्थ दशा में रहना चाहिये। स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में रहता है और स्वस्थ शरीर स्वस्थ मन से प्रभावित होकर अच्छी अवस्था में रहता है। यहाँ वास्तव में शिकायत की तो कोई बात नहीं है यह गलती अनसमझ सत्संगियों की है जो आन्तरिक रस के विचार से शरीर की ओर से बिलकुल अचिन्त हो जाते हैं और अपने स्वास्थ्य की हानि कर देते हैं।

वैद्यक की दृष्टि से सूक्ष्म और कारण शरीर के रोगों और

शित्र क.

हैं अस्तित्व यो रोगों में समानता

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मोतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरो जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ अक्टूबर, १९७८

सुधा मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG-28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक, स्त्री उपयोगी, स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती' सिलसिले के उपन्यास तथा परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव भवन, लेखराजनगर,

अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं०

अ० स० सम्पादक — महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक

व्यवस्थापक व प्रकाशक—

श्रीमती सुधा मीतल,

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़।

Printed by S. Mittal, Data Dayal Printers, Aligarh